

संगीत मार्तण्ड प्रणवरंग जी का शैक्षिक आयाम

प्रीतेश आचार्य*

संगीतमार्तण्ड पं० ओमकारनाथ ठाकुर प्रणवरंग ने 1950 में श्री कला संगीत भारती की स्थापना को मूर्त रूप दिया और योग्य शिक्षकों सहित उपयुक्त पाठ्यक्रम तथा पाठ्य पुस्तक बनाने में संलग्न हुए जिसमें सीखने वालों को लय, स्वर, ताल राग के संस्कारों का उपयुक्त बीजारोपण हों सकें। श्री काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रणवरंग जी के प्रधान शिष्य पं० बलवंत राय भट्ट भावरंग के अनुसार 'दीर्घ प्रयास के बाद सन् 1950, शनिवार का दिन 'कला संगीत भारती' उर्फ 'कालेज आफ म्यूजिक एण्ड फाइन आर्ट्स' के उद्घाटन के लिये निश्चित हुआ। उस दिन संध्या समय रूड़िया छात्रावास के ऊपर के बड़े कक्ष में सभा हुई कुल गीत, ईश वंदना के पश्चात् पंडित जी का धीरे गंभीर व्याख्यान और रसमय गायन हुआ, जिसमें उन्होंने जैजैवंती कबीर साहब का भजन 'रे दिन कैसे कटि है' गाया। अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन के अध्यक्ष माननीय श्री दामोदर दास खन्ना उर्फ लालाबाबूजी का प्रासंगिक वक्तव्य हुआ। तत्कालीन कुलपति महोदय माननीय श्री गोविंद मालवीय जी के द्वारा सभा से निवर्णित अध्यापको का परिचय कराया गया। सन् 1950 के अपरान्ह तीन बजे से 'श्री कला संगीत भारती' में अध्यापन कार्य प्रारंभ हुआ।

संगीत सिखाने के अन्तर्गत शिक्षक द्वारा गाए हुए या बताए हुए स्वर या राग के मात्र अनुकरण या विद्यार्थियों द्वारा दोहराए जाने को पंडित जी पर्याप्त नहीं मानते थे अतः स्वर अर्थात् अक्षर स्वर अन्तराल अर्थात् स्वर शब्द एवं अंतरालों के संयोग या संयोजन से स्वर वाक्यों की निर्मिति से राग भाषा का ज्ञान हो सके और तब उस राग में निहित भाव को वह अभिव्यक्त कर सके, अलंकार बना सके और अलंकारों से राग व्यक्तित्व को सजा सके और उसके सौन्दर्य से स्वयं एवं श्रोताओं को रिझा सके। इस महत् उद्देश्य के लिए पंडित जी यह आवश्यक समझते थे कि जिस प्रकार किसी भाषा को बोलने लिखने पढ़ने के लिए वर्णमाला को लिखना पहचानना और अक्षरों को जोड़कर शब्द बनाना आवश्यक होता है। उसी प्रकार संगीत सिखाने की वह व्यवस्था अपनाई और बनाई जाए जिससे सीखने वाला लय स्वर की बोली पहचान सके और अपने भाव व्यक्त कर सके। उसे लय स्वर का ज्ञान हो जाए

इसलिए संगीत शिक्षण की दृष्टि से प्रथम वर्ष के पाठ्य पुस्तक संगीतांजलि में उन्होंने जो विशिष्ट प्रयास किया उनके बिन्दु महत्वपूर्ण और ध्यातव्य है। परंपरा से यह सद्वृत्ति ही प्रणवरंग जी को संगीतांजलि की रचना के पश्चात् इतनी क्षमता सम्पन्न कर गयी की उन्होंने हिन्दी साहित्य कह वैश्विक महाकाव्य कामायनी का संगीत रूपक अपने स्वर संयोजन में साभिनय प्रस्तुत कराया और कामना का भी स्वर संयोजन करते हुए ओपेरा को शास्त्रीय संगीत में समन्वित करते हुए प्रस्तुत किया जिससे संगीत के साथ अन्य क्षेत्र के अन्य लोग भी चकित हो गए

“प्रणवरंग” जी की शिक्षा में व्याप्त उनकी अतुलनीय वाणी का विश्लेषण करते हुए उनके प्रशिष्य डॉ० राजेश्वर आचार्य “प्रभावरंग” के अनुसार प्रणव वाणी में ओजस्वी बल था—वाणी—याचक की नहीं त्रासक की नहीं हृदयवाचक थी, अनुशासक थी, नेहोपासक थी। भाषा की शब्द संपदा सीमित होती है इसलिए इससे निर्मित साहित्य में शब्द की शक्ति व्यंजना से विस्तार पाती है। अक्षर और शब्द के बीच ध्वनि सेतु का तत्त्वज्ञाता अर्थ अन्वय और भावसमन्वय का व्याख्याता हो सकता है इसी हेतु व्यास और समास के प्रसास कार्यनिष्ठ रहे हैं। शब्द ने अर्थ के अर्थ जब भी और समर्थ होने के उपाय किए भाषा को अधिक से अधिक पर्याय दिये। प्रणव का वागर्थ व्यक्तित्व ओऽम् की शाश्वत व्याप्ति का ही प्रभाव नहीं है अपितु नादत्व प्राप्ति का भी नियामक प्राण है। शब्द में निहित ध्वनि के यथास्थान यथाभाव बलाघात से क्षेत्रकाकु आदि का यथोचित विनिमय ही श्रोता प्रेक्षक के लिए तन्मयकारक होता है। शस्त्र होना, शस्त्र संचालन में निपुण होना सही लक्ष्यवेधी होना, तीनों अनिवार्य हैं।

प्राकृतिक स्वर ग्राम अर्थात् शुद्ध स्वर सप्तक से प्रायः सभी परिचित होते हैं क्योंकि बोलचाल में भी तीन से चार स्वरों तक का उपयोग स्वभावतया अभिव्यक्ति में होता ही है। अतः इस प्राकृतिक परिचय को अभ्यास द्वारा घनिष्ठता में बदलते हुए पंडित जी ने बनी बनाई चीज की नकल के स्थान पर चीज बनाने बनवाने की विधि अपनायी और इसके लिए सरलतम विधि औड़व षाड़व लक्षणों को अपनाया गया अर्थात् स्वर सप्तक में से प्रथमतया पांच—पांच स्वरों के प्रकार अपनाने से बनते हुए रागों की शिक्षा के लिए अपनाया गया। आठ या नौ रागों के वार्षिक लक्ष्य में से दो—दो स्वरों को वर्जित करते हुए पांच को अपनाने की विधि राग निधि कैसे बनती है इसका सुगमता से ज्ञान विद्यार्थी को हो सके यह दृष्टि इस प्रक्रिया में निहित थी। ध्यातव्य है कि प्रथम तीन रागों के क्रम में कोमल या तीव्र स्वर वाले राग नहीं लिए गए।

सा रे ग प ध सां — भूपाली

सा रे ग प नी सां — हंसध्वनि

सा रे म प ध सां — दुर्गा

इससे यह प्रमाणित होता है कि शुद्ध स्वर सप्तक के प्रथमतया तीन प्रकार लेते हुए पहले भूपाली राग लिया गया जिसके पूर्व भाग अर्थात् पूर्वांग में एक स्वर मध्यम को लांघते हुए वर्जित करना सिखाया गया और उत्तरांग में निषाद को वर्जित करना सिखाया गया पुनः दूसरे राग हंसध्वनि में पूर्वांग में भूपाली के समान मध्यम वर्जित करना (जो कि वो पहले सीख चुका है) और उत्तरांग में धैवत के स्थान पर भूपाली में वर्जित निषाद को अर्जित करना सिखाया। इन दो रागों में सा रे ग प, सा रे ग प का क्रम विद्यार्थी सीख चुकते हैं तब उन्हें ग को वर्जित हुये सा रे म प से परिचित कराया जाता है। भूपाली में और हंसध्वनि में सा रे ग प, सा रे ग प करते हुए सा और रे पर अधिकार कर चुके हैं अब इसी सा रे की जोड़ के साथ ग—प, ग—प की भी जोड़ी दो बार हो चुकी। पंचम पर पहुंचना ही है, सा रे वह सीख चुके हैं अब ग प के स्थान पर उन्हें म प करना है इन स्वर जोड़ियों के अभ्यास के बाद भूपाली का ध सां उसके पास पहले से है इस आधार पर उसे मात्र एक स्वर सीखना पडा बाकी पूर्व अर्जित था ही। अब इस क्रिया के बाद उसे पुनः याद दिलाया जाता है। हंसध्वनि के 'नी' को उतार कर कोमल नी कैसे बनेगा। आरोह में तो पूर्वांग में स रे म प उसके पास दुर्गा का है और उत्तरांग में हंसध

वनि का नी सा है। अब उसे लौटते समय अवरोह में निषाद को उतारना अर्थात् कोमल स्वर का प्रथम परिचय दिया जाता है। ध्यातव्य है कि सबसे निकट 'सा' के पास 'नि' ही रहता है अब यदि कोमल नि को पहचानने या पकड़ने या गाने में विद्यार्थी को नासमझी के कारण कठिनाई होती हो तो उसके पूर्व परिचित मध्यम को 'सा' बनवाते हुए सा रे ग म कराएंगे तो वह मध्यम 'नि' का ही रूप होगा। बड़ी कोमलता से उसे स्वर कोमल करना सिखा लिया जाता है और इस कोमल 'नि' को स्पष्ट और सदा स्मरणीय बनाने के लिए ऐसा राग लिया गया जिसमें आरोह में शुद्ध नि और अवरोह में कोमल निषाद के रूप में एक स्वर के दो रूपों के ज्ञान को स्पष्ट कर दिया गया और विद्यार्थी यह भी जान गया कि एक स्वर के दो रूप जब लगते हैं तो आरोह में शुद्ध और अवरोह में कोमल लगता है और औड़व-षाड़व (5-6) की गिनती करते समय एक स्वर के दो रूपों को एक ही गिना जाना है। अब सारंग के बाद तिलंग में इसी क्रिया में पूर्व परिचित रे को छोड़ दिया गया और हंसध्वनि वाले ग प में 'म' को जोड़ दिया गया ग म पनी हो गया और सारंग वाले नी सां नी प कर लिया गया तो तिलंग राग हो गया। छठवे क्रम में पांच स्वरों के क्रम में सा ग म ध नी सां तो सा ग जानता है और हर राग में दोहराए गए मात्र पंचम को हटाया गया ध सां वह सीख चुका है दुर्गा, भूपाली में। नी सां हंसध्वनि में सीख चुका है। रे सभी में सीखा है किन्तु तिलंग में रे वर्जित करना सीख चुका और ग म ग सा सीख भी चुका है तो सिर्फ रे और प को वर्जित कर भिन्न षड्ज को पा गया।”

उदाहरण के लिये प्रणवरंग रचित संगीतांजली प्रथम भाग की बंदिश का सांगीतिक विश्लेषण निम्नवत है।

राग भूपाली –त्रिताल स्थायी– प्रथम नमन गणनायक चरणा

अमित विघ्न अरु मति भ्रम हरणा

अन्तरा-संगीत शास्त्र पढ़न चाहत हूं।

बुद्धि बल देहूँ मैं तुमरे ही शरणा^३

संगीतांजली प्रथम भाग में सहजगम्य बंदिशो का संकलन नवप्रवेशी विद्यार्थियों हेतु ही किया गया है। ग्रन्थ में क्रियात्मक पक्ष के अंतर्गत दी गयी प्रथम रचना राग भूपाली में निबद्ध है। भूपाली राग के चयन की भूमिका का विश्लेषण इसी अध्याय के आरम्भ में किया जा चुका इसी परिपेक्ष्य में मध्यम निषाद को वर्जित करने पर शुद्ध सप्तक के शेष स्वरों से यह राग प्राप्त होता है। इस राग का चयन प्रारम्भिक राग के रूप में करने से इसी के अनुकूल सरल, सहज तथा बोधगम्य रचना का चयन भी अपेक्षित हो जाता है। इस का ध्यान ग्रन्थकार द्वारा दिया गया परिणामतः प्रथम नमन गणनायक चरणा को ग्रन्थ में सम्मिलित किया गया है।

भूपाली औड़व जाति का राग है यद्यपि इन्ही पांच स्वरों वाले अन्य रागों को आगामी वर्षों के पाठ्यक्रम में स्थान दिया गया है क्योंकि उनका राग रूप चलन भूपाली की अपेक्षा आगे के क्रम में आता है। नव प्रवेशी विद्यार्थियों के लिये रसात्मकता बोधगम्यता दोनों का संयोग भूपाली में मिलता है। इसी कारण इस राग को संगीत शिक्षण के शुभारंभ में सिखाया जाता है। शिक्षण परम्परा में भूपाली को सिखाने के बाद इसी की स्वरावली में मध्यम निषाद के स्थान पर पंचम निषाद वर्जित कर देने से दूसरे लोकप्रिय राग दुर्गा की निर्मित को

समझाते हुए उसका अभ्यास कराया जाता है। शिक्षण की इस प्रक्रिया के आधार पर विद्यार्थियों को रागो की निर्मित के मूलभूत आधार प्रक्रिया का भी क्रमवार ज्ञान होता जाता है।

प्रणवरंग जी के शिष्य भावरंग जी ने भी न केवल रचना की अपितु रचनाकारों को भी निर्माण किया नादतनु की पूजा में रचनाधर्मिता के द्वारा अर्पित करते हुए समर्थ करती प्रत्येक पीढ़ी ने परंपरा का अनुपालन करते हुए मर्यादा के अनुसार परंपरा पर निजी उपलब्धियों एवं सृजनधर्मिता का रंग चढ़ाया। इस प्रकार संगीत के क्षेत्र में ग्रन्थ घराना परंपरा का प्रतिफल आकार ले सका।

संगीत-शिक्षण का विनियोग मुख्य रूप से पाँच धाराओं में हो सकता है।⁴

1. विवेकयुक्त संगीत-श्रवण। इसी के साथ संगीत-समीक्षा को भी सम्बन्ध कर सकते हैं।
2. सामूहिक संगीत में योगदान।
3. एकल गायन वादन।
4. संगीत शिक्षण का प्रशिक्षण
5. संगीतशास्त्र और अनुसंधान उपर्युक्त पाँचों पक्ष 'प्रणवरंग' जी की शिक्षा में समाहित थे।

डा० प्रेमलता शर्मा के अनुसार⁵ इस ग्रन्थमाला में पाठ्यसामग्री को जो क्रम रखा गया है वह वैज्ञानिक भित्ति पर आधारित है और विद्यार्थियों के क्रमिक विकास को सुगम बनाने की उसमें विशेष दृष्टि रखी गई है। संगीत लिपि की जो पद्धति इस ग्रन्थमाला में अपनाई गई है उसमें सरलता और सूक्ष्मता दोनों को यथायोग्य स्थान मिला है एक के लिये दूसरे का बलिदान नहीं हुआ है। विभिन्न रागो की पुरानी बन्दिशों यथावत् रूप से संगीत-लिपि में अंकित की गई है और उनकी सूक्ष्मताओं की रक्षा करने का यथासम्भव यत्न किया गया है।

विशेष रूप में इस पुस्तक का लेखन भी एक नए दृष्टिकोण से हुआ है। उसमें हर राग में लगने वाले विशेष स्वर, स्वर संदर्भ, स्वरों के खास लगाव, ठहराव, उठाव, चलन और विस्तृत आलाप तान के साथ, हर राग की पूरी गायकी की भी स्वरलिपि दी गई है।

प्रणवरंग जी एक वत्सल श्रेष्ठ गुरु युगप्रवर्तक गायक कलाकार के साथ ही संवेदनशील सार्थक, अविस्मरणीय सांगीतिक रचनाओं को जन्म देने वाले अनुपम अनोखे अनूठे **अद्भुत रचनाकार** थे। जिन्होंने समस्त विश्व को आनंदित करने के साथ-साथ ही युवा छात्रों, शिष्यों हेतु भी उनके लिए भी उपयोगी रागक्रम से रचनाओं का सृजन किया। जिसका प्रमाण संगीतांजलि भाग 1-7 तक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. पं० आंकारनाथ ठाकुर प्रथम पुण्यतिथि स्मारिका पृष्ठ 25
2. डा० राजेश्वर आचार्य "प्रभावरंग" के साक्षात्कार पर आधारित
3. संगीतांजली प्रथम भाग
4. प्रेम-रसायन एवं संगीत मीमांसा, संपादन प्रो० उर्मिला शर्मा, पृष्ठ सं० 15
5. संगीत मार्तण्ड पं० आंकारनाथ ठाकुर हीरक-जयन्ती अभिनन्दन पत्रिका पृष्ठ सं० 68
6. आंकारनाथ ठाकुर-प्रकाशक संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली, पृष्ठ सं० 18

